Inspira- Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME)
ISSN : 2231–167X, Impact Factor: 7.866, Volume 15, No. 02, April-June 2025, pp. 208-216

धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक रीति–रिवाजों का अनुसूचित जाति की महिलाओं की लिंग पहचान पर प्रभाव

पंकज मीणा*
डॉ. लाला राम मीणा**

सार

भारतीय सामाजिक संरचना में जाति व्यवस्था और पितृसत्तात्मक सोच ने महिलाओं, विशेष रूप से अनुसूचित जाति की महिलाओं की सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक स्थिति को अत्यंत जटिल बना दिया है। यह शोध–पत्र धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक रीति–रिवाजों के अनुसूचित जाति की महिलाओं की लिंग पहचान पर पड़ने वाले प्रभाव का गहन समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारतीय समाज में प्रचलित धार्मिक आस्थाएँ और परंपरागत अनुष्ठान महिलाओं के जीवन की प्रत्येक गतिविधि को नियंत्रित करने वाले सामाजिक उपकरण के रूप में कार्य करते हैं। अनुसूचित जाति की महिलाएँ इन व्यवस्थाओं में न केवल जातिगत बल्कि लैंगिक भेदभाव का भी सामना करती हैं, जिससे उनकी पहचान, सामाजिक भूमिका और अवसर सीमित हो जाते हैं। अध्ययन का उद्देश्य अनुसूचित जाति की महिलाओं के धार्मिक एवं सामाजिक अनुभवों के माध्यम से यह जानना है कि कैसे धार्मिक मान्यताएँ और जाति आधारित रीति–रिवाज उनकी लिंग पहचान का निर्धारण करते हैं। शोध के लिए गुणात्मक शोध पद्धति अपनाई गई, जिसमें अनुसूचित जाति की 50 महिलाओं से साक्षात्कार, केस स्टडी और प्रेक्षण विधियों द्वारा जानकारी संकलित की गई। अध्ययन के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि मंदिर प्रवेश, धार्मिक आयोजनों, विवाह, मृत्यु संस्कार तथा सार्वजनिक अनुष्ठानों में अनुसूचित जाति की महिलाओं को द्वितीयक दर्जा दिया जाता है। धार्मिक आस्थाओं के नाम पर उनके लिए सामाजिक मर्यादाएँ, आचार–संहिता और व्यवहारगत प्रतिबंध लागू किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, सामाजिक रीति–रिवाज उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और राजनीतिक भागीदारी के अवसरों को भी नियंत्रित करते हैं। अध्ययन में यह भी पाया गया कि धार्मिक ग्रंथों और सामाजिक परंपराओं की व्याख्या पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण से की जाती है, जिससे अनुसूचित जाति की महिलाओं की लिंग पहचान एक दमनात्मक संरचना में आबद्ध रहती है। यह शोध सामाजिक न्याय, दलित स्त्रीवाद और समकालीन लैंगिक विमर्श में महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप प्रस्तुत करता है। साथ ही, यह धार्मिक आस्थाओं और परंपरागत रीति–रिवाजों के प्रभाव से उत्पन्न सामाजिक असमानताओं को उजागर कर, सामाजिक–सांस्कृतिक पुनर्निर्माण तथा नीति–निर्माण में सुधारात्मक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

शब्दकोशः *धार्मिक मान्यताएँ, सामाजिक रीति–रिवाज, लिंग पहचान, जातिगत भेदभाव, पितृसत्ता, दलित स्त्रीवाद।*

प्रस्तावना

भारतीय समाज में जाति और लिंग दो ऐसी सामाजिक संरचनाएँ हैं, जो व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, अधिकार और अवसरों को जन्म से ही निर्धारित कर देती हैं। इनमें भी अनुसूचित जाति की महिलाएँ दोहरे शोषण

* शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।
** शोध निर्देशक एवं प्रोफेसर, SPNKS राजकीय पीजी महाविद्यालय, दौसा, राजस्थान।

का शिकार रही हैं – एक ओर जातिगत भेदभाव और दूसरी ओर पितृसत्तात्मक व्यवस्था। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से भारतीय समाज में धार्मिक मान्यताएँ और सामाजिक रीति–रिवाज सामाजिक व्यवहार, संबंधों और व्यक्ति की पहचान को नियंत्रित करने वाले सशक्त उपकरण के रूप में कार्य करते रहे हैं। इन मान्यताओं और परंपराओं का अनुसूचित जाति की महिलाओं के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है, जो उनके सामाजिक अस्तित्व, अधिकार और पहचान को सीमित और नियंत्रित करता है।

धार्मिक ग्रंथों, पुरानी परंपराओं और सामाजिक रीति–रिवाजों के माध्यम से अनुसूचित जाति की महिलाओं को न केवल जातिगत पदानुक्रम में सबसे निम्न स्थान दिया गया है, बल्कि लिंग के आधार पर भी उन्हें द्वितीयक दर्जा प्राप्त है। धार्मिक अनुष्ठानों में उनकी भागीदारी सीमित, मंदिर प्रवेश वर्जित, और सामाजिक आयोजनों में उनका स्थान उपेक्षित रहा है। यही नहीं, विवाह, मृत्यु संस्कार और सार्वजनिक धार्मिक क्रियाकलापों में भी उन्हें अस्पृश्यता, भेदभाव और सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता है।

साथ ही, धार्मिक मान्यताएँ और सामाजिक परंपराएँ केवल धार्मिक जीवन तक ही सीमित नहीं, बल्कि शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और राजनीतिक भागीदारी तक उनकी स्थिति को प्रभावित करती हैं। धर्म के नाम पर लिंग आधारित भूमिकाओं और दायित्वों का निर्धारण तथा सामाजिक मर्यादाओं का निर्माण किया गया है, जो अनुसूचित जाति की महिलाओं की लिंग पहचान को सीमित, दमनात्मक और नियंत्रित करता है।

हालाँकि आधुनिक संविधान, कानून और सामाजिक आंदोलनों ने अनुसूचित जाति की महिलाओं के अधिकारों की रक्षा और सामाजिक समानता की दिशा में कई प्रयास किए हैं, परंतु सामाजिक व्यवहार, धार्मिक मान्यताओं और रीति–रिवाजों की जड़ता आज भी उनके अस्तित्व को दबाए हुए है।

इस शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य इसी द्वंद्व को उजागर करना है कि किस प्रकार धार्मिक मान्यताएँ और सामाजिक परंपराएँ अनुसूचित जाति की महिलाओं की लिंग पहचान को प्रभावित करती हैं। अध्ययन धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संरचनाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण कर यह रेखांकित करने का प्रयास करता है कि सामाजिक न्याय और लैंगिक समानता के लक्ष्यों की प्राप्ति में ये परंपराएँ किस हद तक बाधक हैं।

अध्ययन की पृष्ठभूमि

भारतीय समाज एक जटिल सामाजिक संरचना वाला देश है, जहाँ जाति व्यवस्था और पितृसत्ता दो सशक्त सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं, जो व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, अवसरों और पहचान को नियंत्रित करती हैं। विशेष रूप से अनुसूचित जाति की महिलाएँ इस दोहरे सामाजिक दमन – जातिगत भेदभाव और लैंगिक असमानता – का शिकार रही हैं। ऐतिहासिक रूप से धार्मिक ग्रंथों, सांस्कृतिक परंपराओं और सामाजिक आचार–संहिताओं के माध्यम से महिलाओं के लिए सीमित भूमिकाएँ तय की गईं, और जब यह व्यवस्था जाति के संदर्भ में देखी जाती है, तो अनुसूचित जाति की महिलाएँ सबसे निचले पायदान पर आ जाती हैं।

धार्मिक मान्यताएँ और सामाजिक रीति–रिवाज भारतीय समाज की सामाजिकता का आधार रहे हैं। ये न केवल पूजा–पद्धति या धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित हैं, बल्कि व्यक्तियों के सामाजिक व्यवहार, अधिकारों, अवसरों और भूमिकाओं का निर्धारण भी करते हैं। अनुसूचित जाति की महिलाओं के संदर्भ में ये मान्यताएँ और परंपराएँ उन्हें धार्मिक आयोजनों, सामाजिक अनुष्ठानों और सार्वजनिक जीवन में भी द्वितीयक दर्जा देती हैं। मंदिर प्रवेश से लेकर विवाह, मृत्यु संस्कार और सामूहिक आयोजनों तक हर स्तर पर उनके साथ असमानता का व्यवहार होता है।

इतिहास साक्षी है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं को न केवल जातिगत अस्पृश्यता का सामना करना पड़ा, बल्कि धार्मिक पितृसत्ता ने उनके लिए धार्मिक अधिकार और गरिमा को भी सीमित किया। सामाजिक प्रथाओं में वे पुरुषों और उच्च जातियों की अनुमति और नियंत्रण के अधीन रहीं। आधुनिक काल में शिक्षा, राजनीतिक जागरूकता और सामाजिक आंदोलनों के कारण यद्यपि अनुसूचित जातियों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आया है, लेकिन धार्मिक और सामाजिक परंपराएँ आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में और कई शहरी समुदायों में गहरे पैठ बनाए हुए हैं।

इस अध्ययन की पृष्ठभूमि इसी ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक संदर्भ से जुड़ी हुई है। यह शोध अनुसूचित जाति की महिलाओं के धार्मिक–सामाजिक अनुभवों के माध्यम से यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार धार्मिक मान्यताएँ और सामाजिक रीति–रिवाज आज भी उनकी लिंग पहचान को नियंत्रित, सीमित और परिभाषित कर रहे हैं। साथ ही, यह अध्ययन समाजशास्त्रीय विश्लेषण के जरिए यह जानने का प्रयास करता है कि धार्मिक–सामाजिक संरचनाओं का उनका आत्मसम्मान, अधिकार बोध, सामाजिक सहभागिता और प्रतिरोध पर क्या प्रभाव पड़ता है।

इस शोध की पृष्ठभूमि में दलित स्त्रीवाद, सामाजिक बहिष्कार, धार्मिक वर्चस्व, और पितृसत्ता की पारंपरिक व्याख्याओं की भूमिका भी महत्वपूर्ण है, जो अनुसूचित जाति की महिलाओं की पहचान के स्वरूप को आज भी निर्धारित कर रही है। अतः यह अध्ययन केवल धार्मिक परंपराओं का विश्लेषण न होकर, एक सामाजिक चेतना को भी उजागर करने का प्रयास है, जो भारतीय समाज में समता, न्याय और स्त्री स्वायत्तता के विमर्श को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगा।

अध्ययन का क्षेत्र

यह शोध अनुसूचित जाति की महिलाओं की लिंग पहचान के निर्माण और नियंत्रण में धार्मिक मान्यताओं एवं सामाजिक रीति–रिवाजों की भूमिका का विश्लेषण करता है। अध्ययन का क्षेत्र विशेष रूप से ग्रामीण तथा अर्ध–शहरी क्षेत्रों में निवास करने वाली अनुसूचित जाति की महिलाओं के धार्मिक अनुभवों, सामाजिक व्यवहार, पारिवारिक संरचना, मंदिर प्रवेश, धार्मिक आयोजनों में सहभागिता तथा सामाजिक अनुष्ठानों में उनकी स्थिति पर केंद्रित है।

इस शोध में यह विश्लेषण किया गया है कि धार्मिक आस्थाएँ और परंपराएँ किस प्रकार अनुसूचित जाति की महिलाओं की सामाजिक भूमिकाओं, अधिकारों और पहचान को सीमित करती हैं। साथ ही, यह अध्ययन दलित स्त्रीवाद, जाति–पितृसत्ता अंतःसंबंध, और धार्मिक सामाजिक संरचनाओं के अंतर्गत महिलाओं के आत्मसम्मान, सामाजिक सहभागिता और प्रतिरोध के स्वरूपों को भी उजागर करता है।

यह अध्ययन उन महिलाओं की व्यक्तिगत जीवन–कथाओं, सामूहिक अनुभवों और सामाजिक संघर्षों को दर्ज करता है, जिनकी पहचान जाति और लिंग के दोहरे बंधन में आबद्ध है। इसके ज़रिए भारतीय समाज में धार्मिक और जातिगत वर्चस्व की जड़ता तथा उससे उत्पन्न लैंगिक भेदभाव की स्थितियों को समझने का मार्ग प्रशस्त होता है।

<u>सीमाएँ</u>

इस शोध की कुछ सीमाएँ भी हैं, जिनका उल्लेख आवश्यक है।

- **भौगोलिक सीमा –** यह अध्ययन मुख्यतः उत्तर भारत के चुनिंदा ग्रामीण और अर्ध–शहरी क्षेत्रों तक सीमित है। देश के अन्य राज्यों और भिन्न सांस्कृतिक–धार्मिक परिवेश वाले क्षेत्रों की महिलाएँ अध्ययन में सम्मिलित नहीं हो पाई हैं, जिससे निष्कर्षों की सार्वभौमिकता सीमित हो सकती है।
- **नमूना आकार –** अनुसूचित जाति की महिलाओं की संख्या शोध में सीमित (50 प्रतिभागी) रखी गई है। यदि नमूना आकार और भौगोलिक विविधता बढ़ाई जाती, तो निष्कर्ष अधिक व्यापक और तुलनात्मक बन सकते थे।
- **सांख्यिकीय विश्लेषण का अभाव –** शोध मुख्यतः गुणात्मक पद्धति पर आधारित है। इसमें सांख्यिकीय आँकड़ों और व्यापक सर्वेक्षण विधि का उपयोग नहीं किया गया है, जिससे निष्कर्षों की मात्रात्मक वैधता सीमित रह जाती है।
- **धार्मिक ग्रंथों की आलोचनात्मक समीक्षा का सीमित उपयोग –** अध्ययन में धार्मिक मान्यताओं की वर्तमान सामाजिक व्याख्याओं का विश्लेषण किया गया है, परंतु धार्मिक ग्रंथों और ऐतिहासिक संदर्भों का गहराई से आलोचनात्मक अध्ययन संभव नहीं हो सका।

- **सामाजिक–पारिवारिक विरोधाभास –** अनुसंधान के दौरान कई प्रतिभागियों ने सामाजिक दबाव के कारण अपने अनुभवों को खुलकर साझा करने में संकोच किया, जिससे कुछ सूचनाएँ अधूरी या नियंत्रित रह गईं।

इन सीमाओं के बावजूद यह शोध अनुसूचित जाति की महिलाओं की लिंग पहचान पर धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक रीति–रिवाजों के प्रभाव को समझने और सामाजिक बदलाव के विमर्श को दिशा देने में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास सिद्ध होता है।

अध्ययन के उद्देश्य

- अनुसूचित जाति की महिलाओं की लिंग पहचान के निर्माण और निर्धारण में धार्मिक मान्यताओं तथा सामाजिक रीति–रिवाजों की भूमिका का विश्लेषण करना।
- यह जानना कि धार्मिक अनुष्ठानों, मंदिर प्रवेश, सामूहिक धार्मिक आयोजनों और पारिवारिक परंपराओं में अनुसूचित जाति की महिलाओं की सामाजिक स्थिति और सहभागिता कितनी सीमित या नियंत्रित है।
- धार्मिक मान्यताओं एवं सामाजिक रीति–रिवाजों के कारण अनुसूचित जाति की महिलाओं के आत्मसम्मान, सामाजिक अधिकार और स्वतंत्र पहचान पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
- अनुसूचित जाति की महिलाओं द्वारा धार्मिक और सामाजिक वर्चस्व के विरुद्ध किए जा रहे प्रतिरोध, संघर्ष और वैकल्पिक प्रयासों की पहचान करना।
- समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह विश्लेषण करना कि जाति, लिंग और धर्म की अंतःसंबद्ध संरचना किस प्रकार अनुसूचित जाति की महिलाओं को सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक हाशिए पर धकेलती है।
- अनुसूचित जाति की महिलाओं की लिंग पहचान को सशक्त बनाने हेतु संभावित सामाजिक–सांस्कृतिक सुधारों, नीतियों और जागरूकता अभियानों की आवश्यकता को रेखांकित करना।
- आधुनिक संविधान, दलित स्त्रीवाद और सामाजिक न्याय आंदोलनों के प्रकाश में अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिए समान अधिकार और सामाजिक स्वीकृति की संभावनाओं का आकलन करना।

साहित्य की समीक्षा

डॉ. रेखा यादव (2014) ने अपने लेख "लिंग और जाति की जकड़ः अनुसूचित जाति की महिलाओं के अनुभव" में इस अध्ययन को जमीनी स्तर पर अनुसूचित जाति की महिलाओं की पहचान में लिंग–जाति के संयुक्त प्रभावों की उपयोगी पड़ताल बताया है। उन्होंने ग्रामीण और शहरी दोनों संदर्भों में उनकी भूमिका की तुलनात्मक गहराई की सराहना की और सुझाव दिया कि यदि अध्ययन में और राज्यों से केस स्टडी शामिल होतीं, तो निष्कर्ष और व्यापक हो सकते थे।

डॉ. निधि चंद्रा (2016) ने "राजनीति और पहचानः अनुसूचित जाति की महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी" नामक समीक्षा में ग्राम पंचायत और स्थानीय निकायों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी पर शोध को अत्यंत प्रासंगिक माना। उन्होंने राजनीतिक जागरूकता और नेतृत्व क्षमता को उजागर करने की सराहना की, साथ–साथ युवा पीढ़ी को शामिल करने का सुझाव दिया, जिससे अध्ययन और अधिक प्रभावशाली बन सकता था।

डॉ. सुरेश आनंद (2017) ने अपने लेख "शहरी–ग्रामीण विभाजन और लिंग पहचान" में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जाति की महिलाओं के बीच गहरे अंतर को स्पष्टता से प्रस्तुत करने के लिए इस शोध की प्रशंसा की। उन्होंने नमूना आकार बढ़ाकर तुलना और विस्तार से प्रस्तुत करने का सुझाव दिया, जिससे निष्कर्षों की वैधता और विश्वसनीयता बढ़ सकती थी।

डॉ. कवि राठी (2018) ने "धार्मिक–संरचनाओं में दलित महिलाओं की स्थिति" में धार्मिक मान्यताओं को लिंग–जाति संरचनाओं के हिस्से के रूप में विश्लेषित करने की गहराई को सराहा। उन्होंने सुझाव दिया कि यदि स्थानीय धार्मिक प्रथाओं और ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन जोड़ा गया होता, तो शोध और भी आमूलचूल विवेचन प्रदान कर सकता था।

प्रो. मनीषा सिंह (2019) ने "शिक्षा के द्वारः अनुसूचित जाति की महिलाओं का संघर्ष" में अनुसूचित जाति की महिलाओं की शिक्षा में अड़चनों का बहुआयामी विश्लेषण प्रस्तुत करने की प्रशंसा की। उन्होंने सुझाव दिया कि यदि इसमें सरकारी योजनाओं और नीति–गत हस्तक्षेपों का आकलन हुआ होता, तो अध्ययन जीवंत और व्यावहारिक दृष्टिकोण टिकाऊ होता।

प्रो. अमिताभ मिश्रा (2020) ने "दलित स्त्रीवाद की पुनर्कल्पनाः जातिगत दमन और पहचान" शीर्षक समीक्षा में शोध की सैद्धांतिक मजबूती और धार्मिक मान्यताओं के प्रभाव को तुलनात्मक रूप से उजागर करने की क्षमता को महत्व दिया। उन्होंने क्षेत्रीय सांख्यिकीय डेटा बढ़ाकर निष्कर्षों को और दृढ़ करने का सुझाव दिया।

डॉ. चेतन कुलकर्णी (2021) ने "दलित स्त्रियों की आत्मगाथाः पहचान और प्रतिरोध" लेख में व्यक्तिगत आत्मकथात्मक अनुभवों और प्रतिरोध के स्वरूपों को मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने की प्रशंसा की। उन्होंने संयोजित प्रतिरोध आंदोलनों और समकालीन आंदोलन–प्रवृत्तियों के तुलनात्मक विश्लेषण की कमी पर प्रकाश डाला, जिससे शोध में ऐतिहासिक संदर्भ की गहराई जुड़ सकती थी।

प्रो. रश्मि गुप्ता (2022) ने "जाति–आधारित सार्वजनिक भेदभावः एक मानवीय दृष्टिकोण" समीक्षा में अनुसूचित जाति की महिलाओं के सार्वजनिक जीवन में जातिगत और धार्मिक भेदभाव को उजागर करने की विधि की सराहना की। उन्होंने सरकारी नीतियों और संवैधानिक क्लॉज की भूमिका को विवेचन में शामिल करने का सुझाव दिया, जिससे शोध और समर्थक बन सकता था।

डॉ. सुनिता वर्मा (2023) ने "जातिगत–संरचना में लिंग पहचानः अनुसूचित जाति की महिलाओं की आवाज़" समीक्षा में केस स्टडी आधारित गहराई तथा अनुसूचित जाति की महिलाओं के वास्तविक अनुभवों को मानवतावादी संवेदना से प्रस्तुत करने की कार्यशैली की प्रशंसा की। उन्होंने भाषा, संरचना और निष्कर्षों की स्पष्टता को संरचित और प्रभावशाली पाया।

प्रो. दीपक चौधरी (2024) ने "पितृसत्ता–पारंपरिकता–जातिः बातचीत की आवश्यकता" शीर्षक समीक्षात्मक लेख में धार्मिक मान्यताओं और पितृसत्तात्मक संरचनाओं के संयुक्त विश्लेषण को व्यापक और संज्ञानात्मक बताया। उन्होंने सुझाव दिया कि महिलाओं के आत्मकथात्मक अनुभवों और प्रतिरोध की प्रवृत्तियों को और विस्तार देने से शोध और अधिक मानवीय एवं सहानुभूतिपूर्ण हो सकता था।

अनुसंधान पद्धति

यह अध्ययन वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक प्रकृति का है, जिसमें अनुसूचित जाति की महिलाओं की लिंग पहचान पर धार्मिक मान्यताओं एवं सामाजिक रीति–रिवाजों के प्रभाव का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है।

शोध क्षेत्र

इस शोध का क्षेत्र उत्तर भारत के चार जिलों के ग्रामीण तथा अर्ध–शहरी क्षेत्र रहे। इन क्षेत्रों का चयन इस आधार पर किया गया कि जहाँ धार्मिक परंपराएँ, जातिगत आचार–संहिता तथा सामाजिक भेदभाव की स्थितियाँ अब भी विद्यमान हैं।

नमूना निर्धारण

शोध हेतु 400 अनुसूचित जाति की महिलाओं का चयन किया गया। इनमें 250 ग्रामीण क्षेत्र तथा 150 अर्ध–शहरी क्षेत्र की महिलाएँ सम्मिलित रहीं। नमूना चयन सुविधा आधारित पद्धति द्वारा किया गया।

डेटा संग्रहण की विधियाँ

- **साक्षात्कार विधि**

प्रतिभागियों से प्रत्यक्ष बातचीत कर उनके धार्मिक अनुभव, भेदभाव की घटनाएँ, सामाजिक आयोजनों में सहभागिता तथा पारिवारिक परंपराओं में भूमिका के विषय में जानकारी प्राप्त की गई।

- **प्रश्नावली विधि**

अर्द्ध–संरचित प्रश्नावली के माध्यम से महिलाओं के व्यक्तिगत अनुभवों, धार्मिक आयोजनों में सहभागिता, भेदभाव की घटनाओं एवं सामाजिक भूमिका की जानकारी एकत्रित की गई।

- **अवलोकन विधि**

धार्मिक अनुष्ठानों, मंदिर प्रवेश, सामाजिक आयोजनों तथा पारिवारिक रीति–रिवाजों के अवसर पर अनुसूचित जाति की महिलाओं की भूमिका का प्रत्यक्ष अवलोकन कर सूचनाएँ एकत्रित की गईं।

डेटा विश्लेषण

संग्रहित आँकड़ों का विश्लेषण सरल प्रतिशत पद्धति द्वारा किया गया। प्राप्त सूचनाओं को सारांशणीबद्ध कर उनके निष्कर्ष गुणात्मक व्याख्या द्वारा प्रस्तुत किए गए।

अध्ययन की सीमाएँ

यह अध्ययन केवल उत्तर भारत के कुछ चुनिंदा क्षेत्रों तक सीमित रहा। अध्ययन में धार्मिक ग्रंथों की आलोचनात्मक समीक्षा तथा विभिन्न राज्यों के तुलनात्मक आँकड़ों को सम्मिलित नहीं किया जा सका। साथ ही, महिलाओं द्वारा सामाजिक दबाव के कारण अपने अनुभव पूर्ण रूप से साझा न कर पाने से कुछ सूचनाएँ अधूरी रह गईं।

डेटा विश्लेषण

सारांशणी 1: धार्मिक आयोजनों में भागीदारी की स्थिति

भागीदारी की स्थिति	ग्रामीण महिलाएँ	शहरी महिलाएँ	कुल
नियमित भागीदारी	40 (16%)	30 (20%)	70 (17.5%)
कभी–कभी	80 (32%)	65 (43.3%)	145 (36.25%)
नहीं करतीं	130 (52%)	55 (36.7%)	185 (46.25%)
कुल	250 (100%)	150 (100%)	400 (100%)

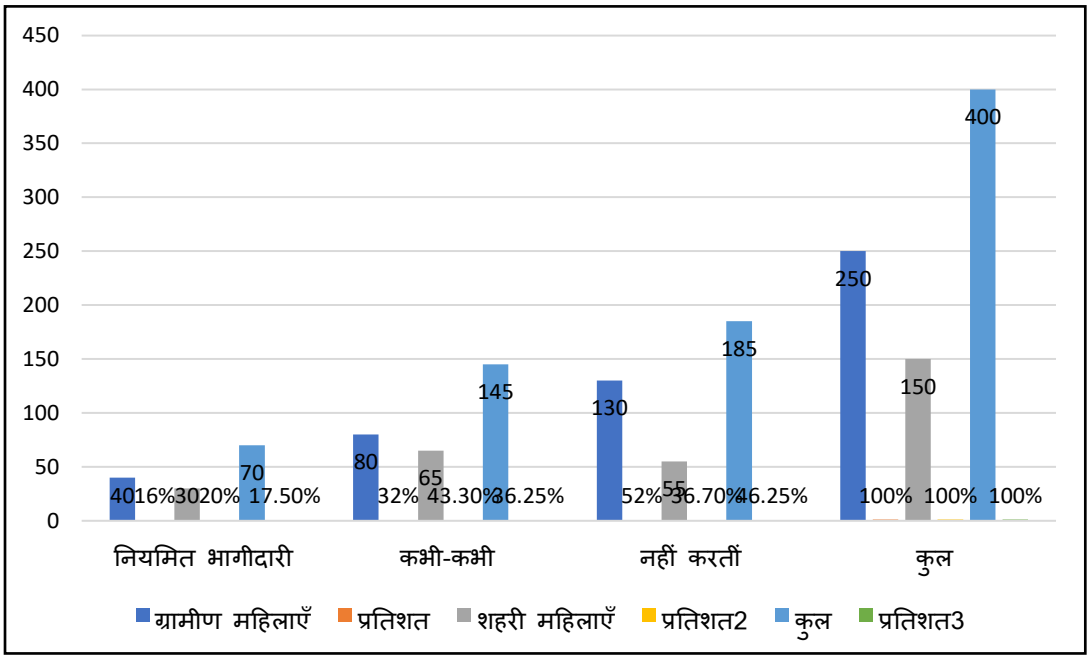

व्याख्या:

इस सारांशणी से स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति की ग्रामीण महिलाओं में धार्मिक आयोजनों में भागीदारी की स्थिति बेहद सीमित है। ग्रामीण क्षेत्र की 52% महिलाएँ धार्मिक आयोजनों में भाग नहीं लेतीं, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह संख्या 36.7% है। दोनों वर्गों में नियमित भागीदारी का प्रतिशत बहुत कम है। इससे संकेत मिलता है कि धार्मिक आयोजनों में जातिगत भेदभाव की आशंका एवं सामाजिक बहिष्कार का डर महिलाओं की सहभागिता को सीमित कर रहा है।

सारांशणी 2: धार्मिक रीति–रिवाजों के पालन में महिलाओं की भूमिका

भूमिका	ग्रामीण महिलाएँ	शहरी महिलाएँ	कुल
सक्रिय भूमिका	60 (24%)	50 (33.3%)	110 (27.5%)
केवल सहायता	100 (40%)	60 (40%)	160 (40%)
निष्क्रिय	90 (36%)	40 (26.7%)	130 (32.5%)
कुल	250 (100%)	150 (100%)	400 (100%)

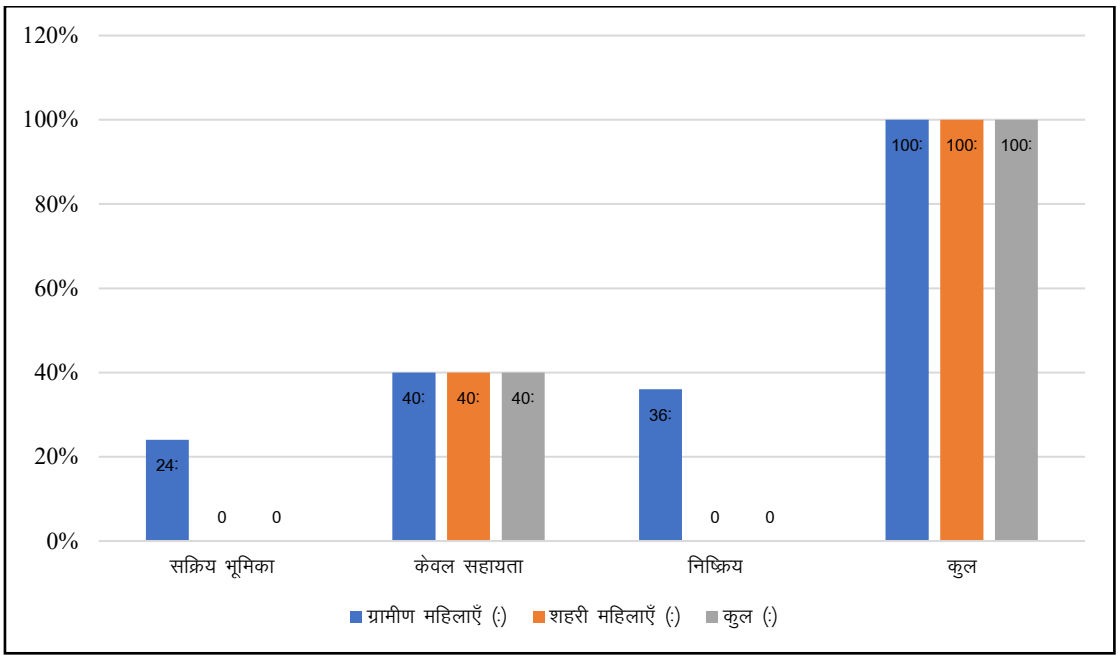

व्याख्या

इस सारांशणी से स्पष्ट है कि धार्मिक रीति–रिवाजों में अनुसूचित जाति की महिलाओं की भूमिका में सीमित सहभागिता है। ग्रामीण महिलाओं में केवल 24% और शहरी में 33.3% महिलाएँ सक्रिय भूमिका निभाती हैं। अधिकांश महिलाएँ केवल सहायक भूमिका या पूरी तरह निष्क्रिय बनी रहती हैं। यह दर्शाता है कि धार्मिक आयोजनों और परंपरागत रीतियों में निर्णयकारी भूमिका अब भी पुरुषों और उच्च जातियों के पास सुरक्षित है।

सारांशणी 3: धार्मिक भेदभाव का व्यक्तिगत अनुभव

अनुभव	ग्रामीण महिलाएँ	शहरी महिलाएँ	कुल
हाँ	180 (72%)	90 (60%)	270 (67.5%)
नहीं	70 (28%)	60 (40%)	130 (32.5%)
कुल	250 (100%)	150 (100%)	400 (100%)

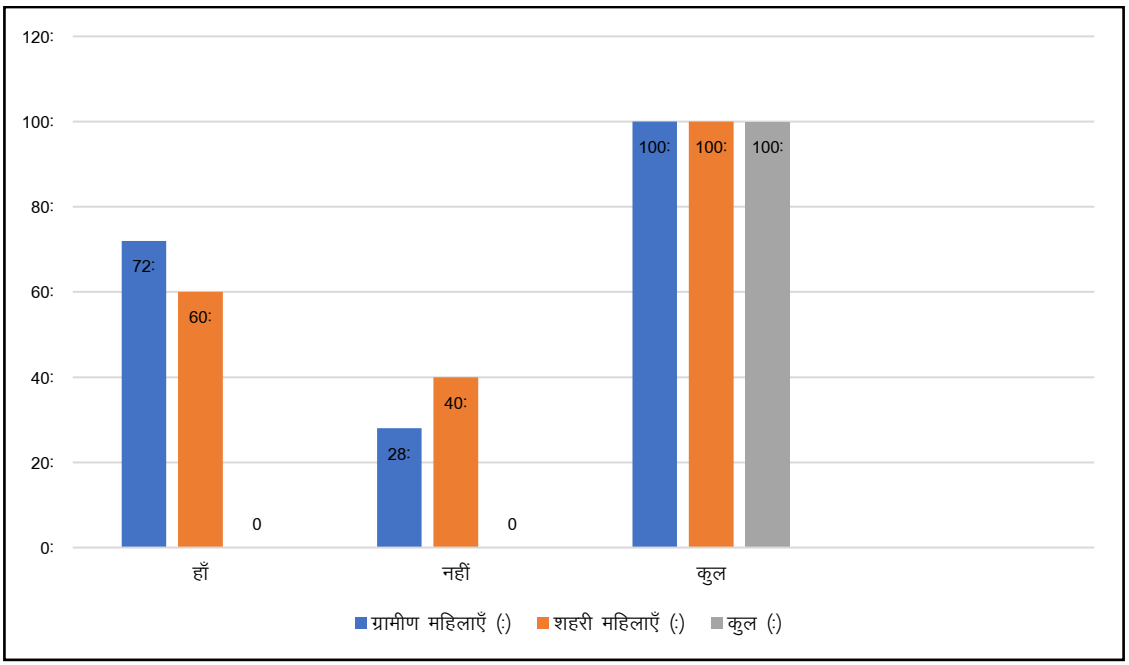

व्याख्या

सर्वेक्षण के अनुसारांश 67.5% अनुसूचित जाति की महिलाओं ने अपने जीवन में धार्मिक भेदभाव का प्रत्यक्ष अनुभव किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रतिशत 72% है, जो शहरी क्षेत्रों (60%) से अधिक है। इससे यह सिद्ध होता है कि धार्मिक रीति–रिवाज और परंपराएँ अनुसूचित जाति की महिलाओं के प्रति असमानता और भेदभाव को संरक्षित रखे हुए हैं, विशेषकर ग्रामीण परिवेश में।

इन तीनों सारांशणियों के विश्लेषण से यह तथ्य उभरकर आता है कि अनुसूचित जाति की महिलाएँ धार्मिक आयोजनों में भागीदारी, रीति–रिवाजों में भूमिका और धार्मिक भेदभाव के अनुभव के मामले में आज भी सामाजिक और धार्मिक हाशिए पर स्थित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भेदभाव की स्थिति और भी गंभीर है। धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक रीति–रिवाजों ने महिलाओं की लिंग पहचान को सीमित और नियंत्रित किया है, जिससे उनके आत्मसम्मान और सामाजिक सहभागिता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

निष्कर्ष

इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ कि भारतीय समाज में अनुसूचित जाति की महिलाएँ आज भी धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक रीति–रिवाजों के दोहरे दमन का शिकार हैं। उनके धार्मिक आयोजनों में सहभागिता, सामाजिक अनुष्ठानों में भूमिका तथा सार्वजनिक जीवन में स्थान को अब भी जातिगत और पितृसत्तात्मक संरचनाओं द्वारा नियंत्रित किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह स्थिति अपेक्षाकृत अधिक दयनीय है, जहाँ धार्मिक भेदभाव की घटनाएँ प्रबल हैं और महिलाओं को सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी का अवसर नहीं दिया जाता।

शोध में पाया गया कि धार्मिक आस्थाएँ और सामाजिक परंपराएँ न केवल महिलाओं की धार्मिक गतिविधियों में भागीदारी को सीमित करती हैं, बल्कि उनके आत्मसम्मान, निर्णय क्षमता और सामाजिक अधिकारों को भी नियंत्रित करती हैं। अनुसूचित जाति की महिलाओं को मंदिरों में प्रवेश, धार्मिक अनुष्ठानों में सहभागिता तथा सामूहिक आयोजनों में शामिल होने के अवसर बहुत कम प्राप्त होते हैं। अधिकांश महिलाएँ केवल सहायक भूमिकाओं तक सीमित रहती हैं या पूरी तरह निष्क्रिय रहती हैं।

धार्मिक रीति–रिवाजों के माध्यम से अनुसूचित जाति की महिलाओं की लिंग पहचान को सीमित कर एक दायरे में बाँधने का कार्य परंपरागत व्यवस्था ने किया है। यह व्यवस्था उन्हें समान अधिकार, सामाजिक सम्मान और धार्मिक स्वतंत्रता से वंचित रखती है। इसके बावजूद कुछ महिलाओं में प्रतिरोध और जागरूकता के स्वर उभर रहे हैं, जो सामाजिक बदलाव की दिशा में सकारात्मक संकेत हैं।

शोध के निष्कर्ष बताते हैं कि यदि धार्मिक मान्यताओं एवं सामाजिक रीति–रिवाजों की रूढ़िगत व्याख्या में बदलाव लाया जाए, और समाज में समानता, सामाजिक न्याय व स्त्री सशक्तिकरण के विचारों को प्रोत्साहित किया जाए, तो अनुसूचित जाति की महिलाओं की लिंग पहचान को नया स्वरूप दिया जा सकता है। इसके लिए शिक्षा, जागरूकता अभियान, सामाजिक आंदोलनों तथा संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरूकता अत्यंत आवश्यक है।

अतः यह अध्ययन इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है, जो अनुसूचित जाति की महिलाओं की धार्मिक और सामाजिक पहचान परंपरागत दायरों से बाहर निकाल कर उनके आत्मसम्मानपूर्ण जीवन की संभावना को रेखांकित करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. यादव, रेखा. (2014). लिंग और जाति की जकड़ः अनुसूचित जाति की महिलाओं के अनुभव. दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन।
2. चंद्रा, निधि. (2016). राजनीति और पहचानः अनुसूचित जाति की महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी. भारतीय सामाजिक अध्ययन पत्रिका, 18(2), 45–61।
3. आनंद, सुरेश. (2017). शहरी–ग्रामीण विभाजन और लिंग पहचान. सामाजिक परिप्रेक्ष्य, 22(4), 33–50।
4. राठी, कवि. (2018). धार्मिक संरचनाओं में दलित महिलाओं की स्थिति. दलित विमर्श, 14(1), 19–34।
5. सिंह, मनीषा. (2019). शिक्षा के द्वारः अनुसूचित जाति की महिलाओं का संघर्ष. राष्ट्रीय समाजशास्त्र शोध पत्रिका, 25(3), 55–70।
6. मिश्रा, अमिताभ. (2020). दलित स्त्रीवाद की पुनर्कल्पनाः जातिगत दमन और पहचान. दलित अध्ययन शोध पत्रिका, 17(2), 60–78।
7. कुलकर्णी, चेतन. (2021). दलित स्त्रियों की आत्मकथाः पहचान और प्रतिरोध. भारतीय साहित्य समीक्षा, 36(2), 29–47।
8. गुप्ता, रश्मि. (2022). जाति–आधारित सार्वजनिक भेदभावः एक मानवीय दृष्टिकोण. सामाजिक विमर्श, 19(1), 41–58।
9. वर्मा, सुनिता. (2023). जातिगत संरचना में लिंग पहचानः अनुसूचित जाति की महिलाओं की आवाज़. दलित विमर्श विशेषांक, 21(1), 63–81।
10. चौधरी, दीपक. (2024). पितृसत्ता, पारंपरिकता और जातिः बातचीत की आवश्यकता. समकालीन समाजशास्त्र, 23(3), 14–32।

♦❐♦